Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

Original Article

जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध न्यायिक सक्रियता: भारतीय उच्चतम न्यायालय की भूमिका और संवैधानिक दायित्व

ब्रिजमोहन सिंह [1] डॉ. महेंद्र कुमार [2]

[1] शोधार्थी, विधि विभाग, बाबू जगजीवन राम विधि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी
[2]शोध निर्देशक, विधि विभाग, बाबू जगजीवन राम विधि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

Manuscript ID:
JRD -2026-180410
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 4(A)
Pp 44-47
April- 2026
Submitted: 18 Mar. 2026
Revised: 28 Mar. 2026
Accepted: 12 Apr. 2026
Published: 30 April. 2026

सारांश

जलवायु परिवर्तन आज के युग की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है, जो न केवल पर्यावरण को बल्कि मानव जीवन, स्वास्थ्य, आजीविका और भावी पीढ़ियों के अधिकारों को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। भारत में न्यायिक सक्रियता ने इस संकट के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संवैधानिक हथियार के रूप में कार्य किया है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार), अनुच्छेद 48–क (पर्यावरण संरक्षण का राज्य का कर्तव्य) तथा अनुच्छेद 51–क (मूल कर्तव्य) की विस्तृत व्याख्या करते हुए जलवायु न्याय को एक मौलिक विधिक दायित्व के रूप में स्थापित किया है। यह शोध पत्र भारतीय उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता का विश्लेषण करता है, प्रमुख निर्णयों की परीक्षा करता है तथा यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध न्यायिक हस्तक्षेप केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि संवैधानिक दायित्व है।

मुख्य शब्द: *जलवायु परिवर्तन, न्यायिक सक्रियता, पर्यावरण न्याय, अनुच्छेद 21, उच्चतम न्यायालय, जनहित याचिका, संवैधानिक दायित्व।*

1. प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन केवल एक वैज्ञानिक समस्या नहीं है, यह एक विधिक, नैतिक और संवैधानिक संकट भी है। ग्लोबल वार्मिंग, अनियमित वर्षा, बाढ़, सूखा, समुद्र स्तर में वृद्धि और हिमनद पिघलना जैसी घटनाएं भारत में लाखों लोगों के जीवन को प्रतिदिन प्रभावित कर रही हैं। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में किसानों की फसल तबाह हो रही है, हिमालयी समुदाय विस्थापित हो रहे हैं और तटीय आबादी समुद्र के बढ़ते जलस्तर से भयभीत है।

ऐसे संकट के सामने जब विधायिका और कार्यपालिका की प्रतिक्रिया अपर्याप्त या विलंबित होती है, तब न्यायपालिका की भूमिका निर्णायक हो जाती है। भारत में न्यायिक सक्रियता का इतिहास यह सिद्ध करता है कि जब भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर संकट आया है, उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका के माध्यम से हस्तक्षेप करते हुए राज्य को उसके संवैधानिक दायित्वों का बोध कराया है।

यह शोध पत्र इस केंद्रीय प्रश्न की परीक्षा करता है कि जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में भारतीय उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता किस सीमा तक प्रभावशाली रही है, और संविधान के कौन से प्रावधान इस सक्रियता की नींव बनते हैं? इसके लिए पत्र पाँच भागों में विभाजित है: संवैधानिक ढाँचे का विश्लेषण, प्रमुख न्यायिक निर्णयों की परीक्षा, न्यायिक सीमाओं का मूल्यांकन, तुलनात्मक वैश्विक परिप्रेक्ष्य और एक समग्र नीतिगत प्रस्ताव।

2. जलवायु न्याय का संवैधानिक आधार

2.1 अनुच्छेद 21 और स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 प्रत्येक नागरिक को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। उच्चतम न्यायालय ने इस अनुच्छेद की व्याख्या अत्यंत विस्तृत रूप में की है। सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य (1991) में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि स्वच्छ जल और वायु का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य भाग है। यदि पर्यावरण इतना प्रदूषित हो जाए कि मानव जीवन दूभर हो जाए, तो यह सीधे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
ब्रिजमोहन सिंह शोधार्थी, विधि विभाग, बाबू जगजीवन राम विधि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

How to cite this article:
सिंह, ब्रिजमोहन, & कुमार, . महेंद्र . (2026). जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध न्यायिक सक्रियतारू भारतीय उच्चतम न्यायालय की भूमिका और संवैधानिक दायित्व. Journal of research & development, 18(4(A)), 44–47. https://doi.org/10.5281/zenodo.20376658

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.20376658
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में इस व्याख्या का विशेष महत्व है। बढती गर्मी, वायु प्रदूषण में वृद्धि, जल संकट और चरम मौसमी घटनाएं सभी मिलकर नागरिकों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार को क्षत–विक्षत करती हैं। एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ के अनेक निर्णयों में न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया कि पर्यावरणीय क्षति को रोकना राज्य का न केवल नीतिगत विकल्प है, बल्कि संवैधानिक अनिवार्यता है।

2.2 नीति–निर्देशक तत्व: अनुच्छेद 48–क

संविधान के भाग IV में स्थित अनुच्छेद 48–क स्पष्ट रूप से राज्य को यह निर्देश देता है कि वह पर्यावरण की रक्षा करे और उसे सुधारे, तथा देश के वनों और वन्यजीवन की रक्षा करे। यद्यपि नीति–निर्देशक तत्व न्यायालय में सीधे प्रवर्तनीय नहीं हैं, तथापि उच्चतम न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980) और अन्य निर्णयों में यह प्रतिपादित किया है कि मूल अधिकारों और नीति–निर्देशक तत्वों की एकीकृत व्याख्या होनी चाहिए। इस प्रकार अनुच्छेद 48–क, अनुच्छेद 21 के साथ मिलकर पर्यावरण संरक्षण को एक प्रवर्तनीय संवैधानिक दायित्व बना देता है।

2.3 अनुच्छेद 51–क(ञ): नागरिकों का पर्यावरणीय मूल कर्तव्य

42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा जोडे गए अनुच्छेद 51–क(ञ) के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखे। उच्चतम न्यायालय ने T-N- गोदावर्मन बनाम भारत संघ (1995) में यह स्पष्ट किया कि यह मूल कर्तव्य केवल नैतिक उद्बोधन नहीं है, बल्कि यह न्यायिक व्याख्या में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. उच्चतम न्यायालय के प्रमुख निर्णय

3.1 एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (1987 से जारी)

पर्यावरण न्याय के संदर्भ में एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ वादों की श्रृंखला भारतीय न्यायिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। इन वादों में उच्चतम न्यायालय ने ताज ट्रेपेजियम जोन में औद्योगिक प्रदूषण को नियंत्रित किया, गंगा नदी की सफाई के लिए व्यापक निर्देश जारी किए, दिल्ली में वाहनों में CNG के उपयोग को अनिवार्य किया और पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इन निर्णयों में न्यायालय ने 'प्रदूषणकर्ता भुगतान करे' और 'एहतियाती सिद्धांत' को भारतीय विधि में स्थापित किया, जो जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध कानूनी संघर्ष की आधारशिला हैं।

3.2 विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) और संस्थागत निर्देश

यद्यपि विशाखा प्रकरण सीधे पर्यावरण से संबंधित नहीं था, किंतु इसमें न्यायालय ने जो न्यायिक सक्रियता का मॉडल स्थापित किया, वह पर्यावरण न्याय में भी अनुसरणीय रहा है। न्यायालय ने जब विधायी शून्यता को भरते हुए संस्थागत दिशा–निर्देश जारी किए, तब यही पद्धति पर्यावरणीय मामलों में राष्ट्रीय हरित अधिकरण और प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को निर्देश देने में प्रयुक्त हुई।

3.3 टी.एन. गोदावर्मन थिरुमुलपद बनाम भारत संघ (1995)

यह वाद वन संरक्षण से प्रारंभ होकर जलवायु न्याय के सबसे विस्तृत न्यायिक अभियान में परिणत हुआ। न्यायालय ने 'वन' शब्द की व्यापक व्याख्या करते हुए इसे भारतीय वन अधिनियम, 1927 की अनुसूची तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसमें समस्त वन भूमि को सम्मिलित किया। न्यायालय ने केंद्रीय अधिकार प्राप्त समिति (CEC) की स्थापना की और वन भूमि के विचलन पर कडे प्रतिबंध लगाए। यह निर्णय वन आवरण के संरक्षण द्वारा कार्बन सोखने की क्षमता बनाए रखने की दृष्टि से जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध एक दीर्घकालिक न्यायिक हस्तक्षेप का उदाहरण है।

3.4 एम.के. रंजीतसिंह बनाम भारत संघ (2024)

सर्वाधिक महत्वपूर्ण और हाल का निर्णय है एम.के. रंजीतसिंह एवं अन्य बनाम भारत संघ (2024) जिसमें उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने पहली बार स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया कि भारतीय नागरिकों को जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से मुक्त रहने का अधिकार है, और यह अधिकार अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) तथा अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) के अंतर्गत संरक्षित है। न्यायालय ने यह भी कहा कि राज्य का दायित्व है कि वह जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए समुचित विधायी और नीतिगत कदम उठाए। यह निर्णय भारत में जलवायु मुकदमेबाजी के इतिहास में एक नए अध्याय का आरंभ करता है।

3.5 भूरेलाल बनाम नगर महापालिका, दिल्ली (1996) और वायु प्रदूषण

दिल्ली के वायु प्रदूषण संकट में न्यायालय का हस्तक्षेप जलवायु न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। न्यायालय ने दिल्ली परिवहन प्राधिकरण को CNG बसें चलाने का निर्देश दिया, डीजल वाहनों की आयु सीमा निर्धारित की और उद्योगों को प्रदूषण मानकों का पालन करने पर बाध्य किया। यह निर्णय यह प्रदर्शित करता है कि जलवायु परिवर्तन में योगदान देने वाले कारकों को न्यायालय किस प्रकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से नियंत्रित कर सकता है।

4. न्यायिक सक्रियता की सीमाएं और चुनौतियां

4.1 शक्तियों के पृथक्करण की समस्या

न्यायिक सक्रियता और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के बीच तनाव जलवायु न्याय में भी स्पष्ट है। आलोचकों का तर्क है कि जलवायु नीति अनिवार्यतः जटिल तकनीकी, आर्थिक और राजनीतिक निर्णयों का समुच्चय है, जिन्हें लोकतांत्रिक रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी संस्थाओं को लेना चाहिए। जब न्यायालय कार्यकारी नीतियों में विस्तृत हस्तक्षेप करता है, तो यह प्रश्न उठता है कि क्या न्यायपालिका अपनी संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण कर रही है। उच्चतम न्यायालय ने स्वयं विभिन्न निर्णयों में यह स्वीकार किया है कि नीति–निर्माण कार्यपालिका का कार्य है और न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप करे जब मौलिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन हो।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

4.2 तकनीकी जटिलता और न्यायिक क्षमता

जलवायु परिवर्तन के मुकदमों में अत्यंत जटिल वैज्ञानिक और तकनीकी तथ्यों की परीक्षा करनी होती है। कार्बन उत्सर्जन के स्तर, ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव, नवीकरणीय ऊर्जा की व्यवहार्यता और जलवायु मॉडलिंग जैसे विषयों में न्यायाधीशों की तकनीकी विशेषज्ञता सीमित होती है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) की स्थापना इसी अंतर को भरने के लिए की गई थी, किंतु अत्यंत जटिल जलवायु विज्ञान के मामलों में न्यायिक परीक्षण की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न बना रहता है।

4.3 न्यायिक निर्देशों का कार्यान्वयन

न्यायालय के आदेशों का प्रभावी कार्यान्वयन जलवायु न्याय की सबसे बडी व्यावहारिक चुनौती है। गंगा सफाई के लिए दशकों में दर्जनों निर्देश जारी किए गए, किंतु नदी की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि न्यायालय के पास स्वयं का कार्यान्वयन तंत्र नहीं होता, वह सरकारी संस्थाओं पर ही निर्भर रहता है। जब राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी हो, तब न्यायिक निर्देश कागजी आदेश बनकर रह जाते हैं।

4.4 न्यायिक पहुंच और सामाजिक असमानता

जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव समाज के सबसे कमजोर वर्गों पर पडता है, जैसे किसान, आदिवासी, मछुआरे और तटीय समुदाय। किंतु न्यायिक सक्रियता तक पहुंच अभी भी सीमित है। जनहित याचिका के माध्यम से न्यायिक हस्तक्षेप संभव है, परंतु इसके लिए भी जागरूकता, संसाधन और विधिक सहायता की आवश्यकता होती है जो प्रायः इन समुदायों को उपलब्ध नहीं होती।

5. वैश्विक परिप्रेक्ष्य और तुलनात्मक विश्लेषण

जलवायु मुकदमेबाजी एक वैश्विक प्रवृत्ति बन चुकी है। नीदरलैंड्स में Urgenda Foundation बनाम नीदरलैंड्स सरकार (2019) में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को 2020 तक 1990 के स्तर की तुलना में 25 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन कम करने का निर्देश दिया। यह विश्व का पहला ऐसा निर्णय था जिसमें सरकार को जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में मानवाधिकार दायित्व के आधार पर बाध्य किया गया। जर्मनी में Federal Constitutional Court ने 2021 में यह निर्णय दिया कि जलवायु संरक्षण अधिनियम की अपर्याप्तता युवा पीढी के भविष्य के मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। पाकिस्तान में लाहौर उच्च न्यायालय ने Leghari बनाम Pakistan (2015) में सरकार को जलवायु परिवर्तन नीति लागू करने के लिए बाध्य किया।
इन वैश्विक उदाहरणों की तुलना में भारतीय उच्चतम न्यायालय की स्थिति विशिष्ट है। भारत में न्यायिक सक्रियता की एक सुदृढ परंपरा है और जनहित याचिका की सुलभता ने इसे और प्रभावशाली बनाया है। एम.के. रंजीतसिंह (2024) के निर्णय ने भारत को उन देशों की श्रेणी में खडा कर दिया है जहां जलवायु परिवर्तन से सुरक्षा को एक मूल अधिकार के रूप में न्यायिक मान्यता मिली है। यह अंतर्राष्ट्रीय जलवायु न्याय आंदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण न्यायशास्त्रीय योगदान है।

6. प्रस्तावित नीतिगत ढांचा

6.1 जलवायु न्याय अधिकरण की स्थापना

न्यायालय की तकनीकी क्षमता की सीमाओं को देखते हुए यह आवश्यक है कि एक विशेष जलवायु न्याय अधिकरण की स्थापना की जाए जिसमें विधिक विशेषज्ञों के साथ–साथ जलवायु विज्ञानियों, पर्यावरण अर्थशास्त्रियों और सामाजिक वैज्ञानिकों को भी सम्मिलित किया जाए। राष्ट्रीय हरित अधिकरण के अनुभव को ध्यान में रखते हुए इस अधिकरण को और व्यापक शक्तियां और संसाधन प्रदान किए जाने चाहिए।

6.2 जलवायु परिवर्तन विधान

उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता को एक सुदृढ विधायी आधार की आवश्यकता है। भारत में एक समग्र जलवायु परिवर्तन अधिनियम की अनुपस्थिति न्यायिक हस्तक्षेप को जटिल बनाती है। संसद को एक ऐसा अधिनियम बनाना चाहिए जो राष्ट्रीय जलवायु लक्ष्य, कार्बन बजट, उत्सर्जन में कमी की समय–सीमा और पीडितों को मुआवजे की व्यवस्था निर्धारित करे।

6.3 न्यायिक निर्देशों का प्रभावी अनुपालन

न्यायालय के आदेशों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक स्वतंत्र अनुपालन निगरानी तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए। न्यायालय नियमित रिपोर्टिंग, स्वतंत्र लेखापरीक्षा और सार्वजनिक जवाबदेही तंत्र के माध्यम से अपने आदेशों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित कर सकता है। अवमानना कार्यवाही के अतिरिक्त वित्तीय दंड और वरिष्ठ अधिकारियों की व्यक्तिगत जवाबदेही निर्धारित की जानी चाहिए।

7. निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध भारतीय उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है। एक ओर, न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्या करते हुए, एहतियाती सिद्धांत और 'प्रदूषणकर्ता भुगतान करे' के सिद्धांत को अपनाते हुए, तथा राष्ट्रीय हरित अधिकरण जैसी संस्थाओं को दिशा–निर्देश देते हुए एक सशक्त न्यायिक न्यायशास्त्र विकसित किया है। एम.के. रंजीतसिंह (2024) का ऐतिहासिक निर्णय इस यात्रा का अभी तक का सर्वोच्च बिंदु है।
दूसरी ओर, न्यायिक सक्रियता की अपनी सीमाएं हैं। शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत, तकनीकी जटिलता, कार्यान्वयन की चुनौतियां और न्यायिक पहुंच की असमानता ये सभी कारक न्यायिक हस्तक्षेप की प्रभावशीलता को सीमित करते हैं।
इसलिए, जलवायु न्याय के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका तीनों मिलकर कार्य करें। न्यायालय की भूमिका संवैधानिक संरक्षक की है, विधायिका की भूमिका नीति–निर्माता की और कार्यपालिका की भूमिका कार्यान्वयनकर्ता की। जब ये तीनों मिलकर जलवायु संकट से लडेंगे, तभी भावी पीढियों के लिए एक स्वस्थ, सुरक्षित

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

और टिकाऊ पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सकेगा। अंततः, जलवायु न्याय केवल कानूनी प्रश्न नहीं है। यह हमारी सामूहिक नैतिक जिम्मेदारी का प्रश्न है।

संदर्भ सूची

1. उच्चतम न्यायालय, भारत. (1991). सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य, AIR 1991 SC 420. भारतीय उच्चतम न्यायालय रिपोर्ट.
2. उच्चतम न्यायालय, भारत. (1987–2024). एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (बहु–वाद श्रृंखला), (1987) 1 SCC 395 एवं अनुवर्ती निर्णय.
3. उच्चतम न्यायालय, भारत. (1995). टी.एन. गोदावर्मन थिरुमुलपद बनाम भारत संघ, (1997) 2 SCC 267.
4. उच्चतम न्यायालय, भारत. (2024). एम.के. रंजीतसिंह एवं अन्य बनाम भारत संघ, Civil Appeal No. 27 of 2024.
5. उच्चतम न्यायालय, भारत. (1980). मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, AIR 1980 SC 1789
6. दुबे, एस.के. (2019). भारत में पर्यावरण विधि और न्यायिक सक्रियता. नई दिल्ली, ईस्टर्न बुक कंपनी.
7. शर्मा, राजीव. (2021). जलवायु परिवर्तन और संवैधानिक न्यायशास्त्र: भारतीय परिप्रेक्ष्य. जर्नल ऑफ इंडियन लॉ एंड सोसायटी, 12(2), 45–78.
8. Urgenda Foundation v- State of the Netherlands, Supreme Court of the Netherlands, ECLI:NL:HR:2019:2007 (2019).
9. Neubauer et al- v- Germany, Federal Constitutional Court, BvR 2656/18 (2021). 1 BvR 78/20.
10. Leghari v- Federation of Pakistan, Lahore High Court, W-P- No- 25501/2015 (2015).
11. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP). (2023). Global Climate Litigation Report: 2023 Status Review- नैरोबी: UNEP-
12. भारत सरकार. (2016). राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (NAPCC). पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय.
13. मिश्रा, एम.पी. (2020). पर्यावरणीय न्याय और भारतीय संविधान: एक विश्लेषण. भारतीय विधि संस्थान पत्रिका, 62(1), 1–34.
14. राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010. संसद, भारत गणराज्य. अधिनियम संख्या 19/2010.
15. Intergovernmental Panel on Climate Change ¼IPCC½- ¼2023½- SiÛth Assessment Report: Climate Change 2023 & Synthesis Report- Geneva: IPCC.